भीमराव अंबेदकर

बाबा साहेब भीमराव अंबेदकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 ई० में महू, मध्यप्रदेश में एक दलित परिवार में हुआ था । मानव मुक्ति के पुरोधा बाबा साहेब अपने समय के सबसे सुपठित जनों में से एक थे । प्राथमिक शिक्षा के बाद बड़ौदा नरेश के प्रोत्साहन पर उच्चतर शिक्षा के लिए न्यूयार्क (अमेरिका), फिर वहाँ से लंदन (इंग्लैंड) गए । उन्होंने संस्कृत का धार्मिक, पौराणिक और पूरा वैदिक वाङ्मय अनुवाद के जरिये पढ़ा और ऐतिहासिक-सामाजिक क्षेत्र में अनेक मौलिक स्थापनाएँ प्रस्तुत कीं । सब मिलाकर वे इतिहास मीमांसक, विधिवेत्ता, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, शिक्षाविद् तथा धर्म-दर्शन के व्याख्याता बनकर उभरे । स्वदेश में कुछ समय उन्होंने वकालत भी की । समाज और राजनीति में बेहद सक्रिय भूमिका निभाते हुए उन्होंने अछूतों, स्त्रियों और मजदूरों को मानवीय अधिकार व सम्मान दिलाने के लिए अथक संघर्ष किया । उनके चिंतन व रचनात्मकता के मुख्यतः तीन प्रेरक व्यक्ति रहे - बुद्ध, कबीर और ज्योतिबा फुले । भारत के संविधान निर्माण में उनकी महती भूमिका और एकनिष्ठ समर्पण के कारण ही हम आज उन्हें भारतीय संविधान का निर्माता कह कर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं । दिसंबर, 1956 ई० में दिल्ली में बाबा साहेब का निधन हो गया ।

बाबा साहेब ने अनेक पुस्तकें लिखीं । उनकी प्रमुख रचनाएँ एवं भाषण हैं - 'द कास्ट्स इन इंडिया : देयर मैकेनिज्म', जेनेसिस एंड डेवलपमेंट', 'द अनटचेबल्स, हू आर दे', 'हू आर शूद्राज', बुद्धिज्म एंड कम्युनिज्म', बुद्धा एण्ड हिज धम्मा', 'थाट्स ऑन लिंग्युस्टिक स्टेट्स', 'द राइज एंड फॉल ऑफ द हिन्दू वीमेन', 'एनीहिलेशन ऑफ कास्ट' आदि । हिंदी में उनका संपूर्ण वाङ्मय भारत सरकार के कल्याण मंत्रालय से 'बाबा साहब अंबेदकर संपूर्ण वाङ्मय' नाम से 21 खंडों में प्रकाशित हो चुका है ।

यहाँ प्रस्तुत पाठ बाबा साहेब के विख्यात भाषण 'एनीहिलेशन ऑफ कास्ट' के ललई सिंह यादव द्वारा किए गए हिंदी रूपांतर 'जाति-भेद का उच्छेद' से किंचित संपादन के साथ लिया गया है । यह भाषण 'जाति-पाँति तोड़क मंडल' (लाहौर) के वार्षिक सम्मेलन (सन् 1936) के अध्यक्षीय भाषण के रूप में तैयार किया गया था, परंतु इसकी क्रांतिकारी दृष्टि से आयोजकों की पूर्णतः सहमति न बन सकने के कारण सम्मेलन स्थगित हो गया और यह पढ़ा न जा सका । बाद में बाबा साहेब ने इसे स्वतंत्र पुस्तिका का रूप दिया । प्रस्तुत आलेख में वे भारतीय समाज में श्रम विभाजन के नाम पर मध्ययुगीन अवशिष्ट संस्कारों के रूप में बरकरार जाति प्रथा पर मानवीयता, नैसर्गिक न्याय एवं सामाजिक सद्भाव की दृष्टि से विचार करते हैं । जाति प्रथा के विषमतापूर्वक सामाजिक आधारों, रूढ़ पूर्वग्रहों और लोकतंत्र के लिए उसकी अस्वास्थ्यकर प्रकृति पर भी यहाँ एक संभ्रांत विधिवेत्ता का दृष्टिकोण उभर सका है । भारतीय लोकतंत्र के भावी नागरिकों के लिए यह आलेख अत्यंत शिक्षाप्रद है ।

श्रम विभाजन और जाति प्रथा

यह विडंबना की ही बात है कि इस युग में भी 'जातिवाद' के पोषकों की कमी नहीं है। इसके पोषक कई आधारों पर इसका समर्थन करते हैं। समर्थन का एक आधार यह कहा जाता है कि आधुनिक सभ्य समाज 'कार्य कुशलता' के लिए श्रम विभाजन को आवश्यक मानता है और चूँकि जाति प्रथा भी श्रम विभाजन का ही दूसरा रूप है इसलिए इसमें कोई बुराई नहीं है। इस तर्क के संबंध में पहली बात तो यही आपत्तिजनक है कि जाति प्रथा श्रम विभाजन के साथ-साथ श्रमिक विभाजन का भी रूप लिए हुए है। श्रम विभाजन, निश्चय ही सभ्य समाज की आवश्यकता है, परंतु किसी भी सभ्य समाज में श्रम विभाजन की व्यवस्था श्रमिकों के विभिन्न वर्गों में अस्वाभाविक विभाजन नहीं करती। भारत की जाति प्रथा की एक और विशेषता यह है कि यह श्रमिकों का अस्वाभाविक विभाजन ही नहीं करती बल्कि विभाजित वर्गों को एक-दूसरे की अपेक्षा ऊँच-नीच भी करार देती है, जो कि विश्व के किसी भी समाज में नहीं पाया जाता।

जाति प्रथा को यदि श्रम विभाजन मान लिया जाए तो यह स्वाभाविक विभाजन नहीं है, क्योंकि यह मनुष्य की रुचि पर आधारित नहीं है। कुशल व्यक्ति या सक्षम श्रमिक समाज का निर्माण करने के लिए यह आवश्यक है कि हम व्यक्तियों की क्षमता इस सीमा तक विकसित करें, जिससे वह अपने पेशा या कार्य का चुनाव स्वयं कर सके। इस सिद्धांत के विपरीत जाति प्रथा का दूषित सिद्धांत यह है कि इससे मनुष्य के प्रशिक्षण अथवा उसकी निजी क्षमता का विचार किए बिना, दूसरे ही दृष्टिकोण, जैसे माता-पिता के सामाजिक स्तर के अनुसार, पहले से ही अर्थात गर्भधारण के समय से ही मनुष्य का पेशा निर्धारित कर दिया जाता है।

जाति प्रथा पेशे का दोषपूर्ण पूर्वनिर्धारण ही नहीं करती बल्कि मनुष्य को जीवनभर के लिए एक पेशे में बाँध भी देती है। भले ही पेशा अनुपयुक्त या अपर्याप्त होने के कारण वह भूखों मर जाए। आधुनिक युग में यह स्थिति प्राय: आती है, क्योंकि उद्योग-धंधों की प्रक्रिया व तकनीक में निरंतर विकास और कभी-कभी अकस्मात परिवर्तन हो जाता है, जिसके कारण मनुष्य को अपना पेशा बदलने की आवश्यकता पड़ सकती है और यदि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मनुष्य को अपना पेशा बदलने की स्वतंत्रता न हो तो इसके लिए भूखों मरने के अलावा क्या चारा रह जाता है ? हिंदू धर्म की जाति प्रथा किसी भी व्यक्ति को ऐसा पेशा चुनने की अनुमति नहीं देती है, जो उसका पैतृक पेशा न हो, भले ही वह उसमें पारंगत हो। इस प्रकार पेशा परिवर्तन की अनुमति

न देकर जाति प्रथा भारत में बेरोजगारी का एक प्रमुख व प्रत्यक्ष कारण बनी हुई है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रम विभाजन की दृष्टि से भी जाति प्रथा गंभीर दोषों से युक्त है । जाति प्रथा का श्रम विभाजन मनुष्य की स्वेच्छा पर निर्भर नहीं रहता । मनुष्य की व्यक्तिगत भावना तथा व्यक्तिगत रुचि का इसमें कोई स्थान अथवा महत्त्व नहीं रहता । इस आधार पर हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आज के उद्योगों में गरीबी और उत्पीड़न इतनी बड़ी समस्या नहीं जितनी यह कि बहुत से लोग 'निर्धारित' कार्य को 'अरुचि' के साथ केवल विवशतावश करते हैं। ऐसी स्थिति स्वभावत: मनुष्य को दुर्भावना से ग्रस्त रहकर टालू काम करने और कम काम करने के लिए प्रेरित करती है । ऐसी स्थिति में जहाँ काम करने वालों का न दिल लगता हो न दिमाग, कोई कुशलता कैसे प्राप्त की जा सकती है । अत: यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि आर्थिक पहलू से भी जाति प्रथा हानिकारक प्रथा है । क्योंकि यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रेरणारुचि व आत्म-शक्ति को दबा कर उन्हें अस्वाभाविक नियमों में जकड़ कर निष्क्रिय बना देती है ।

अब मैं समस्या के रचनात्मक पहलू को लेता हूँ । मेरे द्वारा जाति प्रथा की आलोचना सुनकर आप लोग मुझसे यह प्रश्न पूछना चाहेंगे कि यदि मैं जातियों के विरुद्ध हूँ, तो फिर मेरी दृष्टि में आदर्श समाज क्या है ? मेरा उत्तर होगा कि मेरा आदर्श समाज स्वतंत्रता, समता, भ्रातृत्व पर आधारित होगा । क्या यह ठीक नहीं है, भ्रातृत्व अर्थात भाईचारे में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है ? किसी भी आदर्श समाज में इतनी गतिशीलता होनी चाहिए जिससे कोई भी वांछित परिवर्तन समाज के एक छोर से दूसरे छोर तक संचारित हो सके । ऐसे समाज के बहुविध हितों में सबका भाग होना चाहिए तथा सबको उनकी रक्षा के प्रति सजग रहना चाहिए । सामाजिक जीवन में अबाध संपर्क के अनेक साधन व अवसर उपलब्ध रहने चाहिए । तात्पर्य यह कि दूध-पानी के मिश्रण की तरह भाईचारे का यही वास्तविक रूप है, और इसी का दूसरा नाम लोकतंत्र है । क्योंकि लोकतंत्र केवल शासन की एक पद्धति ही नहीं है, लोकतंत्र मूलत: सामूहिक जीवनचर्या की एक रीति तथा समाज के सम्मिलित अनुभवों के आदान-प्रदान का नाम है । इसमें यह आवश्यक है कि अपने साथियों के प्रति श्रद्धा व सम्मान का भाव हो ।

♦ ♦ ♦

ABSOLUTE SOLUTIONS PATNA

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. लेखक किस विडंबना की बात करते हैं ? विडंबना का स्वरूप क्या है ?
2. जातिवाद के पोषक उसके पक्ष में क्या तर्क देते हैं ?
3. जातिवाद के पक्ष में दिए गए तर्कों पर लेखक की प्रमुख आपत्तियाँ क्या हैं ?
4. जाति भारतीय समाज में श्रम विभाजन का स्वाभाविक रूप क्यों नहीं कही जा सकती ?
5. जातिप्रथा भारत में बेरोजगारी का एक प्रमुख और प्रत्यक्ष कारण कैसे बनी हुई है ?
6. लेखक आज के उद्योगों में गरीबी और उत्पीड़न से भी बड़ी समस्या किसे मानते हैं और क्यों ?
7. लेखक ने पाठ में किन प्रमुख पहलुओं से जाति प्रथा को एक हानिकारक प्रथा के रूप में दिखाया है ?
8. सच्चे लोकतंत्र की स्थापना के लिए लेखक ने किन विशेषताओं को आवश्यक माना है ?

पाठ के आस-पास

1. संविधान सभा के सदस्य कौन-कौन थे ? अपने शिक्षक से मालूम करें ।
2. जाति प्रथा पर लेखक के विचारों की तुलना महात्मा गाँधी, ज्योतिबा फुले और डॉ० राममनोहर लोहिया से करते हुए एक संक्षिप्त आलेख तैयार करें और उसका कक्षा में पाठ करें ।
3. 'जातिवाद और आज की राजनीति' विषय पर अंबेदकर जयंती के अवसर पर छात्रों की एक विचार गोष्ठी आयोजित करें ।
4. बाबा साहब भीमराव अंबेदकर को आधुनिक मनु क्यों कहा जाता है ? विचार करें ।

भाषा की बात

1. पाठ से संयुक्त, सरल एवं मिश्र वाक्य चुनें ।
2. निम्नलिखित के विलोम शब्द लिखें –

   सभ्य, विभाजन, निश्चय, ऊँच, स्वतंत्रता, दोष, सजग, रक्षा, पूर्वनिर्धारण
3. पाठ से विशेषण चुनें तथा उनका स्वतंत्र वाक्य प्रयोग करें ।
4. निम्नलिखित के पर्यायवाची शब्द लिखें –

   दूषित, श्रमिक, पेशा, अकस्मात, अनुमति, अवसर, परिवर्तन, सम्मान

शब्द निधि

विडंबना : उपहास

पोषक : समर्थक, पालक, पालनेवाला

पूर्वनिर्धारण	:	पहले ही तय कर देना
अकस्मात	:	अचानक
प्रक्रिया	:	किसी काम के होने का ढंग या रीति
प्रतिकूल	:	विपरीत, उल्टा
स्वेच्छा	:	अपनी इच्छा
उत्पीड़न	:	बहुत गहरी पीड़ा पहुँचाना, यंत्रणा देना
संचारित	:	प्रवाहित
बहुविध	:	अनेक प्रकार से
प्रत्यक्ष	:	सामने, समक्ष
भ्रातृत्व	:	भाईचारा, बंधुत्व
वांछित	:	आकांक्षित, चाहा हुआ

□□□